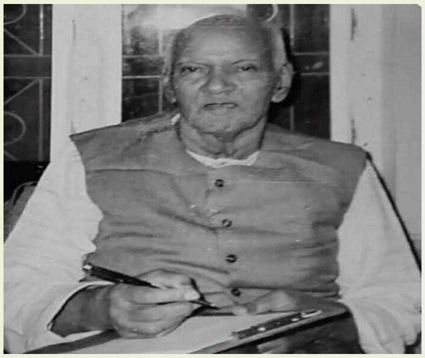


क्या भौतिकवाद ने सच में हमें सुखी और सामर्थ्यवान बनाया है ?

“परिवर्तन के महान क्षण” एवं अनेकों sources,

ऑडियो /video

“क्या भौतिकवाद ने सच में हमने सुखी और सामर्थ्यवान बनाया है ?” यह पुस्तिका परम पूज्य गुरुदेव के 20 पुस्तकों के सेट “क्रांतिधर्मी साहित्य” की एक पुस्तक “परिवर्तन के महान क्षण” पर मूलरूप से आधारित है लेकिन अनेकों sources, ऑडियो /video आदि की भी सहायता ली गयी है।

एक निवेदन

इस पुस्तिका को प्रस्तुत करते समय हमें अपनी अयोग्यता का संकोच तो अवश्य है लेकिन जिस सदुद्देश्य से प्रकाशन हो रहा है अवश्य ही लोकहितकारी होगा। इसी विश्वास के आधार पर एक उत्साह और आशा की लहर हमारे अंदर कौंध रही है। इस पुस्तक में दिए गए कंटेंट को प्रकाशन से पूर्व अनेकों बार पढ़ कर चेक किया गया है लेकिन फिर भी अनजाने में कोई त्रुटि रह गयी होगी जिसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। पाठकों से निवेदन करते हैं कि अगर कोई भी त्रुटि नोटिस करें तो हमें तुरंत सूचित करें ताकि हम उस त्रुटि का निवारण कर सकें।

धन्यवाद

क्या भौतिकवाद ने सच में हमने सुखी और सामर्थ्यवान बनाया है ?

इस तथ्य में तनिक भी संदेह नहीं है कि भौतिक विज्ञान के सुविधा-साधन बढ़ाने वाले पक्ष ने समर्थजनों के लिए लाभ उठाने के अनेकों आधार उत्पन्न एवं उपस्थित किए हैं। आधुनिक मानव की बहिरंग चमक-दमक के स्तर को देखकर अनुमान लगता है कि विज्ञान ने आधुनिक युग को बहुत ही सुविधा- सम्पन्न बनाया है। परन्तु दूसरी ओर तनिक-सी दृष्टि मोड़ते ही पर्दा उलट जाता है और दृश्य ठीक विपरीत दिखने लगता है। सुसम्पन्न, समर्थ, चतुर लोग संख्या में बहुत ही कम हैं , मुश्किल से दस हजार के पीछे दस यानि 0.1 प्रतिशत । विज्ञान ने जो सुविधा- सामग्री इन 0.1 percent

लोगों के हाथों में दी है वह उन्हीं के हाथों में ही सीमित होकर रह गयी है। इन मुठ्ठी भर (या इससे भी कम) लोगों ने जो कुछ भी बटोरा है वह भी कहीं आसमान से नहीं टपका बल्कि दुर्बल दिखने वाले, भोलेभाले, भावुक लोगों को पिछड़े हुए समझकर, उन्हीं के अधिकारों का अपहरण करके वह सम्पन्नता इन लोगों के हाथों में एकत्रित हुई है। आज का मनुष्य इसे विज्ञान की देन, आधुनिक युग का प्रभाव, प्रगति का नवयुग आदि नामों से संबोधित करके खुद को श्रेय दिए जा रहा है। प्रगति के नाम पर इस एक पक्ष की बढ़ोत्तरी ने अधिकांश लोगों का जिस प्रकार से बड़ी मात्रा में दोहन किया है,इसे सोचकर विवेकवानों को असमंजस में डूबना पड़ता है।

क्या है विवेकवानों का असमंजस ?

विवेकवान मनुष्य सोच-सोच कर असमंजस में डूबा जा रहा है कि दृष्टिगोचर होने वाली प्रगति क्या सही मायनों में प्रगति है भी कि नहीं। यदि सही मायनों में प्रगति है तो फिर चारों तरफ त्राहि-त्राहि क्यों मची हुई है ? विवेकवान सोच रहा है कि कहीं इस प्रगति के पीछे अधिकांश लोगों को पीड़ित, शोषित, अभावग्रस्त आदि रखने वाला कुचक्र तो काम नहीं कर रहा, गरीबी हटाने के नाम पर कहीं गरीब ही हटाए तो नहीं जा रहे।

नीतिरहित भौतिकवाद से उपजी दुर्गति

ऊँचा महल खड़ा करने के लिए किसी दूसरी जगह गड्ढे बनाने पड़ते हैं। मिट्टी, पत्थर, चूना आदि जमीन को

खोदकर ही निकाला जाता है। एक जगह टीला बनता है तो दूसरी जगह खाई बनती है। संसार में दरिद्रों, अशिक्षितों, दु:खियों, पिछड़ों की विपुल संख्या देखते हुए विचार उठता है कि उत्पादित सम्पदा यदि सभी में बँट गई होती तो सभी लोग लगभग एक ही तरह का, समान स्तर का जीवन जी रहे होते, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। ऐसा क्यों नहीं हुआ ? वह इसलिए नहीं हुआ कि उत्पादित सम्पदा मात्र एक ही कारण से उत्पन्न हुई । वह एक कारण है कि कुछ लोगों ने अधिक बटोरने की विज्ञान एवं प्रत्यक्षवाद की विनिर्मित मान्यता को अपनाना उचित समझा। इस मान्यता के अनुसार यह उचित समझा गया कि नीति, धर्म, कर्तव्य सदाशयता, शालीनता, समता, परमार्थ परायणता जैसे उन

अनुबन्धों को मानने से इंकार कर दिया जाए जो पिछली पीढ़ियों में आस्तिकता और धार्मिकता के आधार पर आवश्यक माने जाते थे।

आधुनिक युग ने, प्रत्यक्षवाद के युग ने, उन सभी मानवीय मूल्यों को अमान्य ठहरा दिया जिनका कभी समाज में बोलबाला था। आधुनिक युग,कल-पुर्जों के युग (कलयुग) में अगर मानवीय मूल्यों की पालना करने वालों को पिछड़ा हुआ समझा जाए तो सामर्थ्यवानों को किस आधार पर मर्यादा में रहने के लिए समझाया जाए या कौन समझाए। विवेकवान किस तर्क के आधार पर सामर्थ्यवानों को शालीनता और समता की नीति अपनाने के लिए बाधित करे।

प्रतक्षवादियों के अनुसार अगर पशुओं को परोपकारी बनाने के लिए बाधित नहीं किया जा सका, तो बन्दर की औलाद बताए गए मनुष्य को यह किस आधार पर समझाया जा सके कि उसे उपार्जन तो करना चाहिए लेकिन उपार्जित सम्पदा को केवल उपभोग में ही समाप्त नहीं कर देना चाहिए। मनुष्य बन्दर की सन्तान तो अवश्य है, इसमें कोई भी शंका नहीं है लेकिन बन्दर से मनुष्य तक पहुंचने में,ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति कहलाने में, ईश्वर का राजकुमार कहलाने के लिए उस परमपिता को कितना परिश्रम करना पड़ा हम सब भलीभांति जानते हैं। अगर परमपिता के अथक परिश्रम के बाद भी हम बंदर ही बने रहें तो सृष्टि-रचियता को

क्रोध नहीं होगा।अवश्य होगा। यह सृष्टि-रचियता का क्रोध ही है जिसके कारण त्राहि त्राहि मची हुई है।

सदुपयोग की उन परम्पराओं को भी अपनाना चाहिए जो न्याय, औचित्य, सद्भाव एवं बाँटकर खाने की नीति अपनाने की बात कहती है। यदि वह "अध्यात्मवादी प्रचलन" जीवित रहा होता तो प्रस्तुत भौतिकवादी प्रगति के आधार पर बढ़ते हुए साधनों का लाभ सभी को मिला होता। सभी सुखी एवं समुन्नत पाए जाते। न कोई अनीति बरतता और न किसी को उसे सहने के लिए विवश होना पड़ता ।

विज्ञान के साथ सद्ज्ञान का समावेश

अगर किसी प्रकार विज्ञान और सद्ज्ञान का समन्वय हो सकता तो वर्तमान स्थिति स्वर्ग जैसी होती। ऐसी कौन सी अड़चन है जो इन दोनों का समन्वय नहीं होने दे रही।

शायद निम्नलिखित पैराग्राफ में कुछ solution मिल सके।

विज्ञान ने जहाँ एक से बड़कर एक अद्भुत चमत्कारी साधन उत्पन्न किए वहीं दूसरे हाथ से उन्हें छीन भी लिया। कुछ समर्थ लोग स्वर्ग का मज़ा लूटते रहे और शेष सभी दोषारोपण की सड़न में सड़ते रहे। यदि विज्ञान के साथ सद्ज्ञान का समावेश भी रह सका होता

तो भौतिक और आत्मिक सिद्धान्तों पर आधारित प्रगति सामने होती और उसका लाभ हर किसी को समान रूप से मिल सका होता। पर किया क्या जाए? भौतिक विज्ञान जहाँ शक्ति और सुविधा प्रदान करता है, वहीं प्रत्यक्षवादी मान्यताएँ नीति, धर्म, संयम, स्नेह, कर्तव्य आदि को झुठला भी देता है। ऐसी दशा में उद्दण्डता अपनाए हुए समर्थ का दैत्य-दानव बन जाना स्वाभाविक है। Might is right का बोलबाला,जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली प्रवृति उन दुर्बलों का शोषण करेगी ही करेगी।

आइए ज़रा प्रगति के नाम पर प्राप्त हुई उपलब्धियों की चकाचौंध को छोड़ कर इन उपलब्धियों की वस्तुस्थिति (real situation) को खुली आँखों से देखने का प्रयास

करें क्योंकि आँखें बंद कर लेने से सूर्य भगवान अदृश्य तो नहीं हो जाते।

औद्योगीकरण के नाम पर बने कारखानों ने संसार भर में वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण भर दिया है। अणु शक्ति की बढ़ोत्तरी ने विकिरण(radiations) से वातावरण को इस कदर भर दिया है कि तीसरा युद्ध न हो तो भी भावी पीढ़ियों को अपंग स्तर की पैदा होना पड़ेगा। ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग ने संसार का तापमान (global warming) इतना बढ़ा दिया है कि हिम प्रदेश (ice belts) पिघल जाने पर समुद्रों में बाढ़ आने और ओजोन नाम (ozone layer) से जानी जाने वाली पृथ्वी की कवच फट जाने पर ब्रह्माण्डीय किरणें (UV radiations) धरती की समृद्धि को भूनकर रख

सकती हैं, हम तो कहेंगे कि भून रही हैं। रासायनिक खाद (chemical fertilizers)और कीटनाशक रसायन (Insecticides) मिलकर पृथ्वी की उर्वरता को विषाक्तता में बदल कर रखे दे रहे हैं। खनिजों का उत्खनन जिस तेज़ी से हो रहा है, उसे देखते हुए लगता है कि कुछ ही दशाब्दियों में धातुओं का, खनिज तेलों का भण्डार समाप्त हो जाएगा। बढ़ते हुए कोलाहल से तो व्यक्ति और तेज़ी से पगलाने लगेंगे। शिक्षा का उद्देश्य उदरपूर्ति करने के लिए ही रह जायेगा, शिक्षा का शालीनता के तत्त्वदर्शन से कोई वास्ता ही नहीं रहेगा। आहार में समाविष्ट होती हुई स्वादिष्टता से रोग-विष अणुओं की तरह धराशायी बनाकर रहेगी। कामुक उत्तेजनाओं को जिस तेजी से बढ़ाया जा रहा है, उसके

फलस्वरूप न मनुष्य में जीवनी शक्ति का भण्डार बचेगा, न बौद्धिक प्रखरता और न ही शील-सदाचार का कोई निशान बाकी रहेगा। पशु-पक्षियों और पेड़ों का जिस गति से कत्लेआम हो रहा है, उसे देखते हुए यह प्रकृति चुपचाप बैठे तमाशा देखती रहेगी,कदापि नहीं। पारस्परिक व्यवहार में नीरसता, निष्ठुरता, नृशंसता, निकृष्टता के अतिरिक्त अन्य कोई ऊँचाई शायद ही दीख पड़े। मूर्धन्यों का यह निष्कर्ष गलत नहीं है कि मनुष्य सामूहिक आत्म-हत्या की दिशा में तेजी से बढ़ रहा है। नशेबाजी जैसी दुष्प्रवृत्तियों की बढ़ोत्तरी देखते हुए यह कथन कुछ असम्भव नहीं लगता। स्नेह सौजन्य और सहयोग के अभाव में मनुष्य पागल कुत्तों

की भांति एक-दूसरे पर आक्रमण करने के अतिरिक्त और कुछ शायद ही कर सके।

मनुष्य जाति आज जिस दिशा में चल पड़ी है, उससे उसकी महत्ता ही नहीं, सत्ता का भी समापन होते दिखता है। संचित बारूद के ढेर में यदि कोई पागल एक माचिस की तीली फेंक दे तो समझ लेना चाहिए कि यह स्वर्गतुल्य धरालोक धूलि बनकर आकाश में छितरा जायेगा। विज्ञान की बढ़ोत्तरी और ज्ञान की घटोत्तरी ऐसी ही विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में बहुत विलम्ब नहीं लगने देंगी।

भौतिकवाद की उलटबाँसियाँ

जब विष को अमृत की मान्यता मिल जाए और उसे प्राप्त करने के लिए हर किसी को लालायित पाया जाए, तब परिवर्तन अति कठिन पड़ता है। हानि को लाभ समझा जाने लगे और लाभ को गहराई तक समझने में कठिनाई पड़े, उसे हानि समझा जाने लगे तो उल्टी समझ को सीधी करना बहुत कठिन पड़ता है। प्राचीन काल में कम से कम मान्यताएँ तो सही थीं। उठते कदम राजमार्ग को अपनाते थे पर अब तो स्थिति ही कुछ दूसरी बन गई है। भटका हुआ अपने आपको सही मानता है और सबको अपने साथ ले चलने का आग्रह करता है। तात्कालिक(instant) लाभ ही सब कुछ बन गया है। हर कोई यही कहता देखा जाता है "कल किसने

देखा है ,Live for today” जो हम आज कर रहे हैं उसका परिणाम कल या परसों क्या हो सकता है, यह सोचने की किसी को फुरसत नहीं। कुकर्म करने में भी समय, श्रम, साहस और पुरुषार्थ नियोजित करना पड़ता है। बिना हिम्मत के तो चोरी-डकैती भी करते नहीं बन पड़ती । खतरा तो व्यभिचार-अनाचार करने वालों के सामने भी रहता है। उस अनाचार में लगे हुए व्यक्ति भी कम जोखिम नहीं उठाते, फिर भी न जाने क्यों मान्यता यह बन गई है कि सच्चाई का, अच्छाई का रास्ता अपनाने वाले घाटे में रहते हैं। फायदा सिर्फ अनाचारियों को होता है। इस मान्यता के पक्ष में उन्हें अपने इर्द- गिर्द ही ऐसे लोग मिल जाते हैं जो कुकर्म करके हाथों-हाथ नफा कमा लेते हैं। इतने दूर

तक सोचने की उन्हें आवश्यकता प्रतीत ही नहीं होती कि अनुचित तरीके से उठाया हुआ लाभ किस प्रकार दुर्व्यसनों में फँसाता, अपयश का भारी वज़न लादता और अन्त में ऐसे दुष्परिणाम उत्पन्न करता है जिससे न केवल अपनों को वरन् साथियों समेत समूचे समुदाय को पतन एवं पराभव के गर्त में गिरना पड़ता है। अपने आसपास दृष्टि दौड़ा कर देखें तो शायद ही कोई ऐसा दिखाई दे जिसके पास जो कुछ है उससे वह संतुष्ट है। और अधिक पाने की तृष्णा, और ऊपर जाने की तृष्णा उसे ऐसी मृगतृष्णा में ग्रस्त किये जा रही है जिसका कोई अंत है ही नहीं। अगर तृष्णा पूरी हो भी जाये, जो कुछ चाहा था, सब कुछ मिल भी जाये तो अगला प्रश्न वही है "what next ?" इस प्रश्न का उत्तर न मिलने का

अर्थ डिप्रेशन। मृगतृष्णा में भटकने वाले, कस्तूरी की तलाश में दौड़ लगाते रहने वाले हिरन खीज, थकान, निराशा और असमंजस के कारण बेमौत मर रहे हैं। अवांछनीयता अपनाकर कमाई हुई सफलता तत्काल न सही थोड़ी ही देर में, थोड़ा ही आगे बढ़कर ऐसे संकट सामने ला खड़े करती है, जिनसे उबरना कठिन हो जाता है, लेकिन उनके लिए क्या कहा और क्या किया जाए जिनकी मन्द दृष्टि मात्र कुछ ही इंच-फुट तक ही देख सकने में साथ देती है। उन्हें यह अनुमान ही नहीं है कि आगे चलकर कितने बड़े खाईं-खन्दक हैं जिनमें एक बार गिर पड़ने पर कोई सहायता के लिए भी आगे नहीं आएगा और जिस-तिस को कोसते हुए भयावह अन्त का सामना करना पड़ सकता है।

इन दिनों ऐसी ही कुछ गजब की गाज गिरी है। विज्ञान के आधार पर मिली, नीतिमत्ता (Ethics) से बिल्कुल ही दूर सफलताओं ने कुछ ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न कर दी है कि लोग कुमार्ग पर चलते और दुर्गति के भजन गाते देखे जाते हैं। यदि यही प्रचलन बना रहा तो उसका दुष्परिणाम व्यक्ति और समाज के सम्मुख इस स्तर की विभीषिका बनकर सामने आएगा, जिसमें से निकल सकना शायद सम्भव ही न रहे। तथाकथित प्रगति अवगति से भी अधिक महँगी पड़ेगी।

इन दिनों हर क्षेत्र में प्रवेश की हुई समस्याओं, अवांछनीयताओं, विडम्बनाओं के लिए किसे दोष दिया जाए? और उसका समाधान कहाँ ढूँढ़ा जाए? इस सन्दर्भ में मोटे तौर से एक ही बात कही जा सकती है

कि प्रत्यक्षवाद की पृष्ठभूमि पर जन्मे भौतिकवाद ने लगभग सभी नैतिक मूल्यों की उपयोगिता एवं आवश्यकता मानने से इंकार कर दिया है। उसी प्रत्यक्षवादिता को प्रामाणिकता का एक स्वरूप मानने वाले जन-समुदाय ने हर प्रसंग में यही नीति अपना ली है कि प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ माना जाए जिसमें हाथों-हाथ भौतिक लाभ मिलने की बात बनती हो, उसी को स्वीकारा जाए। इस कसौटी पर नीति, सदाचार, उदारता, संयम जैसे उच्च आदर्शों के लिए कोई जगह नहीं रह जाती है। इस प्रत्यक्षवादी तत्त्वदर्शन (philosophy) ने ही मनुष्य को स्वेच्छाचारी बनने के लिए प्रोत्साहित किया है।

उन परम्पराओं को छिन्न-भिन्न करके रख दिया है, जो मानवी गरिमा के अनुरूप मर्यादाओं के परिपालन एवं वर्जनाओं का परित्याग करने के लिए दबाव डालती और सहायता करती थीं।

असमंजस की स्थिति और समाधान

सुविधाएँ सुहावनी लग सकती हैं। उनकी समय-समय पर आवश्यकता भी हो सकती है, पर यह तथ्य भी ध्यान में रखने, गाँठ बाँध लेने योग्य है कि पारस्परिक श्रद्धा, सद्भावना, सहकारिता, नीति-निष्ठा अपनाए बिना पारस्परिक सद्भाव एवं स्नेह सम्वेदना नहीं उभर सकती जिसमें मनुष्य अपना ही नहीं दूसरों का भी हित सोचता है, न्याय को स्वीकारता देता है और अनीति के आधार पर उद्भूत सुविधाओं को स्वीकारने से इंकार

कर देता है। सबके सुख के लिए, शान्ति के लिए इससे कम में काम चलता नहीं और इससे अधिक की कुछ और आवश्यकता नहीं।

यह संसार, विश्व ब्रह्माण्ड जड़ और चेतन दोनों के ही सम्मिश्रण से बना है जिसमें प्रकृति और प्राण का ही सामंजस्य है। चेतना को परिष्कृत करने पर जो उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं, उन्हें ऋषियुग में, सतयुग में लम्बी अवधि तक जाना परखा जा चुका है। इस देश की गौरव-गरिमा का इतिहास उसी प्रधानता के कारण ही ऐतिहासिक बना और प्रख्यात रहा है। अब बीसवीं शताब्दी में प्रधानतया भौतिकता की सत्ता को प्रमुखता मिली है। इस अवधि में दो विश्व युद्ध और 100 से अधिक क्षेत्रीय युद्ध हो चुके हैं। यह संरचना

भौतिकवादी ललक की है, जिसके कारण अपार धन-जन की हानि हुई है। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार सभी कुछ लड़खड़ा गया है। प्रगति युग के अगले चरण कितने भयावह हो सकते हैं, इसकी कल्पनामात्र से दिल दहल जाता है।

यह विचारने के लिए नए सिरे से बाधित होना पड़ रहा है कि भौतिक मान्यताओं के आधार पर संसार को क्या इसी गति से चलने दिया जाना है या अतीत में बरते गए उन सिद्धान्तों को फिर से अपनाया जाना है, जिनके आधार पर मनुष्यों में देवत्व और धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण बना रहा।

भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में controversy

इस असमंजस में एक और नई कठिनाई सामने है कि पुरातन की साक्षी को ध्यान में रखकर यदि जीवनचर्या और लोक व्यवहार को अध्यात्म तत्त्वज्ञान के स्तर पर विनिर्मित करने की बात सोची जाए तो यहाँ भी भारी विडम्बना सामने खड़ी होती है। प्रचलित अध्यात्म सिद्धान्तों और प्रचलनों में भी विकृतियों का, इतना अधिक अवांछनीयता का अनुपात घुस पड़ा है कि कसौटी पर कसते ही वह भी खोटे सिक्के की तरह अप्रामाणिक ही सिद्ध होते हैं। लाखों सन्त-साधु लाखों भजनानन्दी, लाखों कर्मकाण्डी, पूजा व्यवसाई जिस स्थिति में रह रहे हैं, उनके स्तर को उलट-पुलट कर जाँचने से प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में तिरस्कार आदि

के अतिरिक्त और कुछ शेष बच नहीं रहा है। किसी जमाने में थोड़े-से सन्त न केवल भारत को वरन् समस्त विश्ववसुधा को हर दृष्टि से समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाए रखने में समर्थ हुए थे, पर अब तो उनकी संख्या हजारों-लाखों गुनी हो गई है। इतने पर भी विश्वकल्याण की, भारतभूमि की गरिमा को बनाए रखने की बात तो दूर स्वयं के व्यक्तित्व को भी इतना गया-गुज़रा बना बैठे हैं कि सहज विश्वास नहीं होता कि इस प्रयोजन में भी कुछ उत्कृष्टता एवं विशिष्टता शेष रह गई है।

कुछ दिन पूर्व गाँधी, बुद्ध जैसी कुछ ही प्रतिभाएँ प्रकट हुई थीं और अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व से संसार भर में आस्था, उत्साह और उल्लास की एक नई लहर चला सकने में समर्थ हुई थी लेकिन अब तो उनकी गणना

आश्चर्यजनक गति से बढ़ जाने पर भी वातावरण को परिष्कृत करना तो दूर अपने आपको भी प्रामाणिक एवं प्रतिभावान बना पाना दीख नहीं पड़ता। इस निरीक्षण-परीक्षण से प्रतीत होता है कि जैसे लांछन भौतिकवाद पर लगाए जाते हैं, उससे भी अधिक प्रस्तुत अध्यात्मवाद पर लगाए जा सकते हैं। लगता है दोनों ही क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग की गंदगी ने आधिपत्य जमा लिया है। धर्म के नाम पर जितनी विडम्बनाएँ चलती हैं, उन्हें देखते हुए उसे भी अपनाने योग्य मानने के लिए मन नहीं करता।

भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के इलावा कोई तीसरा विकल्प है क्या ?

दोनों ही रास्ते अनुपयुक्त दीखने पर प्रश्न यह उठता है कि इनके अतिरिक्त कोई तीसरा विकल्प भी है क्या? आस्तिकता और नास्तिकता के, श्रेष्ठता और निकृष्टता के बीच क्या कोई मध्य मार्ग भी है ? कुछ भी सूझता नहीं कि क्या चुना जाए क्योंकि जीवन और मरण दोनों ही अनुपयुक्त अविश्वस्त दिखते हैं।

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ही तीसरा विकल्प है

इस असमंजस के बीच एक हल उभरता है कि भौतिक विज्ञान को अध्यात्म तत्त्व ज्ञान के साथ जुड़ना चाहिए था और अध्यात्मवाद का स्वरूप ऐसा होना चाहिए था

जिसे प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरा सिद्ध किया जा सके।

भौतिकवादी मान्यताओं का अपना आकर्षण ही इतना बड़ा है कि उसने 99 प्रतिशत क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लिया है। उसकी अच्छाई-बुराई भी आँखों के सामने है। मात्र अध्यात्म ही ऐसा है जो रहस्य बनकर रह रहा है। उसे नकारते इसलिए नहीं बनता क्योंकि शास्त्रकारों, आप्तजनों और ऋषिकल्प व्यक्तियों के आधार पर जो उत्कृष्टतावादी निष्कर्ष निकलता है, उसे अमान्य ठहराने का कोई कारण नहीं। उसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। योगी अरविन्द, महर्षि रमण, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहँस आदि प्रतिभाएँ उस पक्ष को अपनी वरिष्ठता के बल पर भी सही सिद्ध करती रही हैं।

अध्यात्मता का रहस्य क्या है?

अध्यात्म का रहस्य क्या है ? भूतकाल की साक्षी और वर्तमान की दूरदर्शी विवेचना बताती है कि जन कल्याण अध्यात्म पर ही निर्भर हो सकता है। खोट केवल इतना ही है कि आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान और प्रयोग परीक्षण में कहीं कुछ ऐसा अनुचित आड़े आ गया है जिसके कारण सूर्योदय रहते हुए भी पूर्णग्रहण जैसा कुछ लग जाने के कारण दिन होते हुए भी अन्धेरा छाने लगता है। विज्ञान का बहुत बड़ा तथ्य है कि अगर डाटा(data) कम्पलीट नहीं है तो कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। अध्यात्म की भी यही स्थिति है, अगर प्रयोग करके टेस्ट ही नहीं किया जा सकता तो विशिष्टता(superiority) भी निकृष्टता

(inferiority) में बदल सकती है। जिस प्रकार आदर्शों के अनुशासन को अस्वीकृत कर देने के कारण भौतिक विज्ञान की उपयोगिता और यथार्थता विनाशकारी परिणाम उत्पन्न कर रही हैं उसी प्रकार अध्यात्म ने भी उलटबाँसी अपनाई है और असली के स्थान पर नकली के आ विराजने पर उसकी भी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता खतरे में पड़ गई है।

लेखक (परम पूज्य गुरुदेव) का निजी अनुभव

सत्य और तथ्य को कैसे जाना, परखा जाए? इसके लिए भौतिक क्षेत्र को आदर्शों के साथ जोड़ने पर क्या परिणाम निकल सकता है, इसकी खोजबीन करने का काम दूसरों के ज़िम्मे छोड़कर इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी अभिरुचि, जानकारी एवं रुझान के अनुरूप यही उपयुक्त समझा कि वह अपने छोटे-से जीवन और थोड़े-से समय में,उपलब्ध साधनों का उपयोग इस "विशेष प्रयोजन" (Special purpose) के लिए कर गुज़ारे कि जब शरीर से प्राण श्रेष्ठ हैं तो फिर भौतिक-सम्पदा की तुलना में प्राण चेतना को वरिष्ठता का गौरव क्यों न प्राप्त होना चाहिए? अगले दिनों सतयुग की वापसी के लिए नए सिरे से नया प्रयत्न क्यों न होना चाहिए?

किसी भी रिसर्च के लिए प्रयोगशाला चाहिए, साधन चाहिए और उपकरण चाहिए । यह सभी अपने ही काय-कलेवर में उपलब्ध किए जाने चाहिए और देखा जाना चाहिए कि परिष्कृत अध्यात्म (Refined spirituality) व्यक्ति एवं संसार के लिए उपयोगी हो सकता है या नहीं।

भौतिक विज्ञानियों में से अनेकों ने अपनी अभीष्ट खोज के लिए प्राय: पूरी जिन्दगी लगा दी और लक्ष्य तक पहुँचने में उतावली नहीं बरती, तो परिष्कृत अध्यात्म का स्वरूप खोजने और परिणामों की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक व्यक्ति की एक जिन्दगी यदि पूरी तरह लग जाए तो उसे घाटे का सौदा नहीं कहा जा सकता।

इन पंक्तियों का लेखक अपनी जिन्दगी के प्राय: 80 वर्ष पूरे करने जा रहा है। उसने उस पुरातन अध्यात्म को खोज निकालने के लिए अपने चिन्तन, समय, श्रम एवं पुरुषार्थ को मात्र एक केन्द्र पर केन्द्रित किया है कि यदि पुरातन काल का सतयुगी अध्यात्म सत्य है, यदि ऋषियों की उपलब्धियाँ सत्य हैं, तो उनका वास्तविक स्वरूप क्या रहा होगा और उसके प्रयोग से ऋद्धि-सिद्धि जैसे परिणामों का हस्तगत कर सकना हो पायेगा क्या ? अध्ययन, अनुभव, प्रयोग और विशेषज्ञों की पूछताछ से पता चला है कि Spirituality के दो पक्ष हैं :

1.प्रथम पक्ष है साधक का परिष्कृत व्यक्तित्व और

2.दूसरा पक्ष है साधना-उपासना स्तर का उपक्रम।

आज कल पनप रहे किसी भटकाव ने लोगों को ऐसा कुछ बता दिया है कि जीवन साधना की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। मात्र पूजा और कर्मकाण्डों के बलबूते ही उस सारी महत्ता को हस्तगत किया जा सकता है जिसको कि शास्त्रकारों ने अपने अनुभव में और जीवनक्रम में समाविष्ठ करके वस्तुस्थिति की यथार्थता का पूरी तरह रहस्योद्घाटन किया है।

समस्त विश्व के, विशेषतया मानव समुदाय के भाग्य और भविष्य का भला-बुरा निर्धारण करने वाले इस प्रसंग पर अत्यन्त गहराई तक शोध करने के लिए आकुल-व्याकुल उत्कण्ठा से द्रवित होकर किसी दिव्य मार्गदर्शक ने संकेत किया कि एक बेसिक तथ्य है जिसे

प्रारम्भ से ही समझ लेना चाहिए। यह बेसिक तथ्य निम्नलिखित है:

अध्यात्म को अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित होने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि इस प्रयोजन में प्रवेश करने वाले का व्यक्तित्व उत्कृष्टता से सुसम्पन्न हो। इसके पश्चात ही उपासनापरक कर्मकाण्डों की कुछ उपयोगी प्रतिक्रिया उपलब्ध होती है। यदि मनोभूमि और जीवनचर्या गन्दगी से भरी हो तो समझना चाहिए कि मन्त्र की, पूजा उपचार की प्रक्रिया प्राय: निरर्थक ही सिद्ध होगी। समय, श्रम और साधन सामग्री निरर्थक गँवाने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा। अध्यात्म दिव्य शक्ति के आधारभूत पुंज स्त्रोत हैं। विज्ञान जो सज्जा भर का प्रदर्शन करता है, उसमें आकर्षण और

प्रलोभन के द्वारा बालबुद्धि को फुसलाने के लिए खिलौने जैसी चमक-दमक के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

इस संकेत से लेखक(गुरुदेव) को मार्गदर्शन मिला और विश्वास जमा। फिर भी भ्रान्तियों के जाल-जंजाल से निकलने के लिए आवश्यक समझा गया कि क्यों न अपनी काया की प्रयोगशाला में तथ्य का निरीक्षण-परीक्षण करके देखा जाए। इस निरिक्षण-परिक्षण में हानि ही क्या है। अपने प्रयोग यदि खरे उतरते हैं तो उससे श्रद्धा और विश्वास की वृद्धि ही होती है। यदि मिथ्या सिद्ध होते हैं तो हानि मात्र इतनी ही है कि जैसे लाखों करोड़ों संदेह की स्थिति में रह रहे हैं तो उन्हीं में एक और की (हमारी) वृद्धि हो जाएगी तो क्या फर्क

पड़ेगा। फिर विश्वास और साहसपूर्वक अपनी मान्यता बनाने या दूसरों से साहसपूर्वक कुछ कहने की स्थिति तो समाप्त हो जाएगी।

मन्त्र विज्ञान के सम्बन्ध में जितना कुछ पढ़ा, सुना और गुना था, उसके आधार पर प्रारम्भिक दिनों में ही यह विश्वास जम गया था कि आदि शक्ति के नाम से जानी जाने वाली गायत्री की श्रेष्ठता-वरिष्ठता बिना किसी शंका के कायम है। संचित संस्कार और उनसे सम्बंधित वातावरण भी इसी की पुष्टि करते रहे। उपासना क्रम सरल भी लगा और उत्साहवर्धक भी। गाड़ी चली सो अपनी पटरी पर आगे बढ़ती और लुढ़कती ही चली गई। तब से अब तक न उसमें विराम लिया और न कोई अवरोध ही आड़े आया। 80 वर्ष की

आयु होने तक वह मान्यता, भावना-श्रद्धा आगे ही आगे बढ़ती चली आई है।

मानवी गरिमा के अनुरूप जीवन यापन कैसे किया जा सकता है, उसके साथ जुड़ी हुई मर्यादाओं का परिपूर्ण निर्वाह कैसे हो सकता है और वर्जनाओं से कैसे बचा जा सकता है। यह समझ अन्तराल की गहराई से निरन्तर उठती रही और उसका परिपालन भी स्वभाव का अंग बन जाने पर बिना किसी कठिनाई के होता रहा। गुण, कर्म, स्वभाव, चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में जो तथ्य गहराई तक उतरकर परिपक्व हो जाते हैं, वे छोटे-मोटे आघातों से डगमगाते नहीं। देखा गया कि सघन संकल्प के साथ जुड़ी हुई व्रतशीलता अनायास ही निभती रहती है। सो सचमुच बिना किसी दाग-धब्बे के निभ भी गई।

ईश्वर के प्रति सुनिश्चित आत्मीयता की अनुभूति उपासना, जीवन में शालीनता की अविच्छिन्नता अर्थात् “साधना” तथा करुणा और उदारता से ओतप्रोत अन्तराल में निरन्तर निर्झर की तरह उद्भूत होती रहने वाली “आराधना” यही है, वह त्रिवेणी जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाती है। उस संगम तक पहुँचने पर कल्मष कषायों, दोष-दुर्गुणों के प्रवेश कर सकने जितनी गुंजायश भी शेष नहीं रहती। त्रिपदा कही जाने वाली गायत्री, प्रज्ञा, मेधा, और श्रद्धा बनकर इस स्तर तक आत्मसात हो गई कि लगने लगा कि सचमुच ही वैसा मनुष्य जीवन उपलब्ध हुआ है। जिसे सुर दुर्लभ कहा और देवत्व के अवतरण जैसे शब्दों से जिसका परिचय दिया जाता रहा है।

साधारण स्तर के नर कोल्हू के बैल की तरह पिसते-पिस्ते ही अनमोल जीवन व्यतीत कर देते हैं लेकिन जब भीतर से उत्कृष्टता का पक्षधर उल्लास उभरता है तो अन्तराल में बीज रूप में विद्यमान दैवी क्षमताएँ जागृत एवं सक्रिय होकर अपनी महत्ता का ऐसा परिचय देने लगती हैं जिसे अध्यात्म का वह चमत्कार कहा जा सकता है, जो भौतिक शक्तियों की तुलना में कहीं अधिक समर्थ है। उपासना प्रकरण में श्रद्धा-विश्वास की शक्ति ही प्रधान है। वही उस स्तर की बन्दूक है जिस पर किसी भी फैक्टरी में विनिर्मित कारतूस चलाए जा सकते हैं। उस दृष्टि से मात्र गायत्री मन्त्र ही नहीं, साधक की आस्था के अनुरूप अन्यान्य मन्त्र एवं उपासना विधान भी अपनी सामर्थ्य का वैसा

ही परिचय दे सकते हैं। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में उपेक्षापूर्वक अस्त-व्यस्त मन से कोई भी उपासना क्रम अपनाया जाए, असफलता ही हाथ लगेगी।

परीक्षण के लिए प्रयोगशाला की तथा उसके लिए आवश्यक यन्त्र उपकरणों की जरूरत पड़ती है। इस सन्दर्भ में अच्छाई एक ही है कि मानव शरीर में विद्यमान चेतना ही उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देती है, जो अत्यन्त सशक्त प्रयोग परीक्षणों के लिए भौतिक विज्ञानियों को मूल्यवान यन्त्र उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशाला को जुटाने पर सम्भव होते हैं।

इन दिनों विज्ञान के प्रतिपादन पत्थर की लकीर बनकर जन-जन की मान्यताओं को अपने प्रभाव क्षेत्र में समेट चुके हैं। आज की मान्यताएँ और गतिविधियाँ उसी से

आच्छादित हैं और तदनुरूप प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कर रही हैं। अध्यात्म का स्वरूप विडम्बना स्तर का बनकर रह गया है, फलस्वरूप उसका न किसी साधनारत पर प्रभाव पड़ता है और न वातावरण को उच्चस्तरीय बनाने में कोई सहायता ही मिल पाती है। इस दुर्गति के दिनों से यही उपयुक्त लगा है कि यदि विज्ञान के प्रत्यक्षवाद को, यथार्थता को जिस प्रकार अनुभव कर लिया गया है, उसी प्रकार अध्यात्म को भी यदि सशक्त एवं प्रत्यक्ष फल देने वाला माना जा सकने का सुयोग बन सके तो समझना चाहिए कि सोना और सुगन्ध के मिल जाने जैसा सुयोग बन गया। विज्ञान शरीर और अध्यात्म प्राणचेतना मिलकर काम कर सकें तो समझना चाहिए कि सब कुछ जीवन्त हो गया। एक प्राणवान दुनियाँ

समग्र शक्ति के साथ नए सिरे से नए कलेवर में उद्भूत हो गई। न विज्ञान झगड़ालू रहा और अध्यात्म के साथ जो कुरूपता जुड़ गई है, उसके लिए कोई गुंजाइश ही शेष रह गई है।

साधना से सिद्धि की प्राप्ति

साधना से सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है या नहीं और गुरुदेव को कौन कौन सी सिद्धियों की प्राप्ति हुई। हमने उन सिद्धियों को pointwise लिखने का प्रयास किया है ताकि समझना आसान हो सके। वर्तमान चर्चा आधुनिक प्रतक्ष्यवादी, भौतिकवादी मानव के लिए नहीं है जिसे सब कुछ instant चाहिए, जिसके पास समय तो है नहीं, जो किसी भी कीमत पर केवल लेना ही जानता है।

त्रिधा (तीन रूपों वाली) भक्ति एवं उसकी अद्भुत सिद्धि

उपासना का अपना प्रयोगक्रम चला और उसे अनेकानेक परीक्षणों की कसौटियों पर कसे जाने के उपरान्त सही एवं सशक्त पाया गया। इसी आधार पर अब यह सोचने, कहने और करने की व्यवस्था बन गई है कि संसार को एक नया सन्देश दिया जा सके कि उपेक्षित, तिरस्कृत, विडम्बनाग्रस्त अध्यात्म को यदि पुनर्जीवित किया जा सके तो विश्व चेतना के साथ एक उच्चस्तरीय माहौल जुड़ सकता है। तब भौतिक विज्ञान के लिए भी यह न सोचना पड़ेगा कि वह लाभ देने की तुलना में हानि, विनाश के सरंजाम अधिक जुटाता है। इसलिए उसके उपयोग को आशंका एवं भयानकता के साथ जुड़ा हुआ

सोचा जाए। वस्तुत: बढ़े हुए विज्ञान के चरणों को आध्यात्मिक प्रगति के साथ जोड़ा जा सके तो हम भूतकाल के सतयुग की अपेक्षा और भी अच्छी स्थिति में पहुँच सकते हैं। यों जिस तरह नया आधार सँजोया गया है, उसे देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि हम और भी अधिक ऊँचे स्तर का "महासतयुग" अगले दिनों अपनी इसी धरती पर उतारकर रहेंगे।

आज का मनुष्य बहुत बौना है। इस बौनेपन को संकीर्ण स्वार्थपरता के रूप में भी लिया जा सकता है। होता यही रहा कि वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी संकीर्ण-स्वार्थों के लिए तथाकथित समर्थ लोगों ने प्रयुक्त किया और असंख्य समस्याएँ उत्पन्न कीं। ठीक इसी प्रकार प्रपंचों से बचकर जो अध्यात्म किसी लँगड़े-लूले रूप में

शेष रह गया था उसे भी अपने अथवा अपनों की सम्पन्नता, यशलिप्सा, असाधारण सफलता आदि के लिए ही प्रयुक्त किया जाता रहा। तथाकथित सिद्ध पुरुष भी अपने को वरिष्ठ सिद्ध करने और जिन कुपात्रों ने उन्हें जिस तिस प्रकार प्रसन्न कर लिया, उन्हें उस अध्यात्म द्वारा अधिकाधिक सम्पन्न बनाने में लगे रहे। उस अनुदान का उपयोग निजी विलासिता एवं महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के अतिरिक्त किसी लोकोपयोगी काम में न हो पाया।

अपने प्रयोग में आरम्भ से ही यह व्रतशीलता धारण की गई कि परम सत्ता के अनुग्रह से जो भी मिलेगा उसे परम सत्ता के विश्व उद्यान को ही अधिक श्रेष्ठ, समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने के लिए ही खर्च किया जाता

रहेगा। अपना निजी जीवन मात्र ब्राह्मणोचित निर्वाह भर से काम चला लेगा। औसत नागरिक स्तर से बढ़कर अधिक सुविधा, प्रतिष्ठा आदि की किसी ललक को पास में न फटकने दिया जाएगा। इस प्रयोग के अन्तर्गत अपना आहार-विहार वस्त्र-विन्यास रहन-सहन व्यवहार, अभ्यास ऐसा रखा गया जो न्यूनतम था। आहार इतना सस्ता जितना कि देश के गरीब से गरीब व्यक्ति को मिलता है। वस्त्र ऐसे जैसे कि श्रमिक स्तर के लोग पहनते हैं। महत्त्वाकांक्षा न्यूनतम। आत्म प्रदर्शन ऐसा जिसमें किसी सम्मान, प्रदर्शन और अखबारों में नाम छपने जैसी ललक के लिए कोई गुंजायश न रहे। व्यवहार ऐसा जैसा बालकों का होता है।

यह पृष्ठभूमि बना लेने के उपरान्त शारीरिक और मानसिक श्रम इतना जितना कि कोई पुरुषार्थ परायण कर सकता है, इसे पूजा उपासना तो नहीं पर "जीवन साधना" अवश्य कहा जा सकता है।

इसके उपरान्त उपासना की निर्धारित पद्धति की बारी आई। उसमें श्रद्धा-विश्वास का गहरा पुट रहा और ध्यान रहा कि किसी भी अधिक आवश्यक काम के बहाने उसे किसी भी प्रकार चुकाए जाने का अवसर न मिलने पाए। चिन्तन निजी लाभ का नहीं, परमार्थ सम्पादन का ही रहा। यही कारण है कि अपने पास निजी कहे जाने योग्य एक कानी-कौड़ी की भी कोई संचित सम्पदा नहीं है। पैतृक सम्पदा बड़ी थी पर उसका भी एक-एक पैसा उपयोगी परमार्थिक इमारतों में लगा दिया। यह सारा

जंजाल सिर पर से उतर जाने के उपरान्त व्यामोह से विरक्त मन इतना खाली हो गया जिसका "वैक्यूम" एक सशक्त चुम्बक की तरह

ईश्वरीय अनुकम्पा की अजस्र वर्षा करने लगा। सामर्थ्य भी इतनी आ धमकी जिसके लिए अपनी ओर से नगण्य जितना ही प्रयत्न बन पड़ा।

क्या अध्यात्म से हमें सिद्धियां प्राप्त हुईं ?

अक्सर अध्यात्म को सिद्धियों के साथ जुड़ा हुआ माना जाता है। क्या वे हमें हस्तगत हुईं? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है "हाँ हुईं "। उनमें से यहाँ कुछ ऐसे प्रसंगों की ही चर्चा की जा सकती है जो सर्वविदित हैं, जिनके लिए हर किसी को अपनी आँखें और अपनी निज

की जानकारी ही साक्षी रूप में पर्याप्त हो सकती है। उसके लिए किसी प्रकार की खोजबीन करने की कदाचित ही किसी को आवश्यकता पड़े।

सिद्धियों का संक्षिप्त विवरण

1.युग साहित्य का सृजन

युग साहित्य का सृजन इतनी बड़ी मात्रा में बन पड़ा। उसका इतनी भाषाओं में अनुवाद हुआ कि उस सारे संग्रह को किसी एक मनुष्य के शरीर जितना भारी तोला जा सकता है। इसी लेखन की हर पंक्ति ऐसी है जिसके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि किसी ने भारी खोज, गहन मन्थन एवं व्यक्तिगत अनुभव की छत्रछाया में ही लिखा है। सामान्य बुद्धि यही कह

सकती है कि एक व्यक्ति कम से कम पाँच जन्मों में अथवा पाँच शरीर से ही इतना साहित्य-सृजन कर सकता है। इस प्रयास को भी यदि कोई चाहे तो सिद्ध स्तर का गिन सकता है।

2.नव सृजन की रचना

नव सृजन में कुछ कारगर भूमिका निभा सकने योग्य साथी-सहयोगियों के विशालकाय परिवार का एकत्रीकरण करके रचना करनी । इन दिनों उन सभी की संख्या जो कुछ समय पूर्व पाँच लाख भर थी, अब बढ़कर पच्चीस लाख हो गई है। यह क्रम एक से पाँच, पाँच से पच्चीस, पच्चीस से एक सौ पच्चीस, वाली गुणन-प्रक्रिया के आधार पर द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है और आश्वासन दे रहा है कि प्रगति रुकेगी नहीं, क्षेत्रों और

देशों की परिधि लाँघते हुए विश्वभर में सज्जनों के संवर्धन की प्रक्रिया पूरी करेगी।

परम पूज्य गुरुदेव ने इस क्रान्तिकारी साहित्य की रचना 1988-1990 के दौरान की थी और इसी पुस्तक के अंत में लिखा था कि इन्हें लागत मूल्य पर छपवाकर प्रचारित प्रसारित करने की सभी को छूट है। कोई कापीराइट नहीं है। प्रयुक्त आँकड़े उस समय के अनुसार है। इन्हें वर्तमान के अनुरूप संशोधित कर लेना चाहिए। हम exact आंकड़ों के बारे में तो कुछ नहीं कहेंगें लेकिन इतना अवश्य कह सकते हैं कि गुरुदेव द्वारा रचित परिवार 2023 की गणना के अनुसार लाखों से बढ़कर कई करोड़ हो चुका है।

3.दुष्प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष

सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिए हजारों प्रज्ञा केन्द्रों की स्थापना और उनकी गतिविधियों में नवसृजन की, सत्प्रवृत्ति संवर्धन की रचनात्मक प्रवृत्तियों की अनवरत अभिवृद्धि। जिन लोगों ने विनिर्मित प्रज्ञा पीठों की हजारों की संख्या में भव्य इमारतें देखी हैं, वे एक ही बात सोच सकते हैं कि यह अपने समय का "अभिनव सृजन आन्दोलन" है। चार धाम बनाने वालों को जितना श्रेय मिला उसकी तुलना में यह सृजन कार्य कितना महँगा और कितना विस्तृत बन पड़ा है, इसे एक आश्चर्य ही कहना चाहिए। प्रचलित कुरीतियों एवं अवांछनीयताओं के साथ टक्कर लेने की मोर्चेबन्दी को "दूसरे महाभारत" के समतुल्य कहा जा सकता है।

4.एक और सिद्धि

ईर्ष्यालुओं दुर्जनों के आक्रमण सच्चाई को किस प्रकार हराने और तोड़ने में असफल होते हैं, इस तथ्य को मात्र वे लोग ही जानते हैं जो अपने निकट सम्पर्क में रहे और उन हरकतों से परिचित रहे हैं। चूँकि इन प्रसंगों की कभी चर्चा नहीं की गई,विरोध के लिए एक पतली छड़ी तक नहीं उठाई गई तो वे अनाचार कैसे प्रगट होते, जिन्हें दैवी प्रयोजनों में विश्वामित्र यज्ञ-ध्वंस षड्यन्त्र की ही उपमा दी जा सकती है। भक्त की रक्षा कैसे होती है, इसके प्रमाण में प्रहलाद की, गज की, द्रौपदी आदि की उपमा दी जाती है। एक कड़ी और भी इन्हीं दिनों की यह जुड़ सके तो कोई हर्ज नहीं। इसे भी एक सिद्धि कह सकते हैं। सहायता के लिए किसी के आगे

हाथ न पसारने के पीछे कोई अहंकार प्रदर्शन का भाव नहीं रहा किन्तु यह एक “प्रयोग परीक्षण” था कि यदि भगवत् प्रयोजन के लिए कहीं से कोई प्रामाणिकता उभरे तो उसकी शक्ति और सम्पदा कितनी बढ़ जाती है? इसके लिए पुरातन उदाहरण हनुमानजी का है। नया उदाहरण अपने समय के इस प्रयोग-परीक्षण को समझा जा सकता है कि गंगा के याचना न करने पर भी हिमालय किसी भी प्रकार कभी न सूखने वाली जलराशि प्रदान करता रहता है।

5.देने वाले का अहंकार और लेने वाले का अहसान

अपनाए गए क्रिया-कलापों में कितनी जनशक्ति की, कितनी धनशक्ति की, कितने साधनों की आवश्यकता पड़ती है और वह सुदामा पुरी को द्वारिका पुरी में बदल

जाने का कैसे उदाहरण बनती है , इस दृश्य को कोई एक प्रकार से सिद्ध स्तर की भी गिन सकता है। अपनी अपेक्षा पिछड़ों, दु:खियारों, आवश्यकताओं की सहायता करना मानवी कर्तव्य है। गिरों को उठाने, उठों को उछालने में ही सच्चे सामर्थ्यवानों के हाथ खुलते और सहायता देते रहे हैं। इस लम्बे जीवन की अवधि में कितनों की कितनी भौतिक एवं आत्मिक सहायता बन पड़ी, यह प्रसंग तो असाधारण रूप से विस्तृत है, पर उसकी चर्चा पर इसलिए प्रतिबन्ध लगा दिया है कि देने वाले का अहंकार उभर सकता है और लेने वाला किसी अहसान की अनुभूति में अपनी हेठी समझकर संकोचग्रस्त हो सकता है।

6. 80 वर्ष के द्रोणाचार्य

सिद्धियों के और भी किसी प्रत्यक्ष प्रमाण का परिचय प्राप्त करना हो तो उसी गणना में एक कड़ी यह भी है कि इन दिनों अस्सी वर्ष की आयु तक पहुँचने वाले प्राय: जराजीर्ण हो जाते हैं और मौत के घर जाने की तैयारी करने लगते हैं। पर यहाँ दृश्य दूसरा ही है। शरीर, मन, संकल्प और पुरुषार्थ उसी स्तर का परिचय दे रहा है जैसे कि वयोवृद्ध द्रोणाचार्य धनुष संधानने और लक्ष्य बेधने की शिक्षा अन्त काल तक देते रहे। बुढ़ापे में भी जवानी जीवन्त रह सकती है, इस स्तर का एक सघन स्वरूप यह भी है।

इस चर्चा को यहीं पर क्यों छोड़ दिया गया ?

परम पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि यहाँ हो रही चर्चा को अप्रासंगिक, अनावश्यक और अहंकार स्तर का उद्धत उल्लेख न समझा जाए, इसलिए इस लम्बे प्रसंग को उनके लिए शेष छोड़ दिया है, जो शरीर न रहने पर कुछ और खोजने-बताने के लिए उत्सुक होंगे।

सच्चे अध्यात्मवाद में अत्यधिक विलक्षण शक्ति है।

शरीर बल, सम्पत्ति बल, बुद्धिबल, पद और सहायकों का बल बहुत समय से श्रेय-चर्चा के अधिकारी रहे हैं लेकिन यह भी भुलाया नहीं जाना चाहिए कि आध्यात्मिक साधना के सहारे उपजने वाला "आत्मबल" भी ध्यान देने योग्य है। वह न तो शंकित है और न छल कपट से भरा है। गड़बड़ी मात्र वहीं पड़ती है जहाँ उसके साथ जुड़े सिद्धान्तों को भुला दिया जाता है और कुछ मन्त्र-यंत्रों से ही गगनचुम्बी लाभ की अपेक्षा की जाने लगती है और उसके सफल न होने पर निराशा एवं नास्तिकता उभरती है। व्यक्तिगत लाभ तक अपनेआप को सीमाबद्ध कर लेने वाला व्यक्ति अपनी संकीर्णता में,ओछेपन में, नीचता में इतना अधिक लिप्त हो जाता

है कि उसकी दुष्प्रवृतियों को पनपने का आधार मिल जाता है । अध्यात्म क्षेत्र में भी जो लोग इसी रीति-नीति को अपनाते हैं, उनकी मर्यादा भी एक प्रकार से समाप्त हो जाती है। अपनेआप को भगवान् का एजेण्ट बताकर लोगों की ऐसी मनोकामनाएँ पूरी कराने का आश्वासन देना जो उनकी पात्रता से बाहर हैं। ऐसी बातें जिनके मनोरथों में सम्मिलित हो जाएँ, समझना चाहिए कि उनका पूजा-पाठ भजन- कर्मकाण्ड ओछे स्तर का है। उससे अध्यात्म पक्ष की गरिमा बढ़ेगी नहीं वरन् घटेगी ही। ईश्वर के निकटवर्ती सम्बन्धी बनना, उनको दर्शन देने के लिए बाधित करना, उनकी कचहरी के दरबारी बनकर सामीप्य-सान्निध्य का मज़ा लूटना, औरों से अपने को वरिष्ठ होने की मान्यता बनाना, ऐसा

ओछापन है जो किसी भी वास्तविक भगवद् भक्त का अनुगामी बनने वाले को तनिक भी शोभा नहीं देता। यह स्थिति लगभग ऐसी ही है जैसी कि सेठ, साहूकार, राजनेता, पंचतारा होटलों में मौज मज़ा करने वालों की मन:स्थिति होती है। अमीर लोग भी सेवक, चाकर, चारण और चमचों को इनाम-इकराम बाँटते रहते हैं। ईश्वर की हैसियत उन्हीं लोगों के समतुल्य बना देने का मनोरथ न तो किसी के अध्यात्मवादी होने का प्रमाण है और न ही ऐसे व्यक्ति को साधक- उपासक ही कहा जा सकता है।

सच्चा अध्यात्मवादी लोकसेवी ही हो सकता है। जनसाधारण की समस्याओं के सामाधान में यदि अध्यात्म का प्रयोग नहीं होगा, तो श्रेष्ठता कैसे पनपेगी

और दुष्टता कैसे निरस्त होगी। फिर भगवान् का उद्यान सूखता, कुम्हलाता और नष्ट-भ्रष्ट होता ही दीख पड़ेगा। यदि मूर्धन्यजन लोक मंगल को अपने कर्तव्य क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करेंगे, तो उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, सुख-शान्ति और प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक सहयोग, सद्भाव, संयम, सदाचार का वातावरण बन ही न सकेगा। आज तो प्रत्यक्षवाद और बढ़े हुए वैभव से जो अनाचार बढ़ा है, उस पर अंकुश लगाने के लिए अध्यात्म तत्त्वज्ञान (Spiritual philosophy) के पक्षधरों को अगले मोर्चे पर ही खड़ा होना चाहिए। यदि यह पक्षधर नज़रअंदाज़ करें तो यही कहा जाएगा कि उनकी गणना विलास-वैभव जैसी महत्त्वाकांक्षाओं से पीड़ित ओछे जनों जैसी ही है। इन पक्षधरों को

ऋषिकल्प योगी, तपस्वियों के स्तर की मान्यता किसी भी प्रकार मिलना असंभव ही है।

परम पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि यह सभी तथ्य अपने मार्गदर्शक, दादागुरु ने उसी समय समझा दिए थे जब इस दिशा में बढ़ने का आदेश दिया था और उससे उत्पन्न होने वाली शक्ति असाधारण होने का संकेत भी दिया था। सैद्धान्तिक तत्त्वज्ञान (Theoretical philosophy) की दृष्टि से तो यह समझा जा सकता है कि आदर्शवादिता का पालन करने में अध्यात्म सहायता तो करता है लेकिन उससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसमें कोई असाधारण शक्ति भी है जो बुराइयों से निपटने और अच्छाइयों को बढ़ाने के लिए असाधारण परिवर्तन लाने में समर्थ हो सके। यदि वह विशेषता सिद्ध न की

जा सकी तो केवल धर्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त और कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध होने की आशा नहीं की जा सकती, विशेषकर उस समय जब पतन का प्रवाह प्रचंड हो रहा है और इस प्रचंडता को रोककर, नियोजित सृजन का कार्य अत्यंत आवश्यक प्रतीत हो रहा है। आज के युग में व्यक्तिगत प्रखरता उपलब्ध करने के लिए भी ऐसी ही असाधारण शक्ति चाहिए। वह शक्ति इन दिनों पर्याप्त नहीं मानी जा सकती जो मात्र परलोक की ही चर्चा करे और इस लोक को सुधारने, सँभालने, उठाने और सुख-शान्तिमय बनाने में काम न आ सके।

"इन दिनों तो विशेषतया ऐसी ही भक्ति की आवश्यकता है जो शक्ति से भी परिपूर्ण हो।"

गुरुदेव के मन में सदैव असमंजस बना ही रहा कि भक्ति का सम्बन्ध मात्र भाव-सम्वेदनाओं तक ही सीमित तो नहीं है? जाँच-पड़ताल इसकी भी करनी चाहिए कि क्या इस भक्ति में इतनी शक्ति है जो भौतिक विज्ञान (Physical science) द्वारा प्राप्त की जाने वाली उपलब्धियों की तुलना कर सके। यह भी परखने की आवश्यकता है कि क्या भक्ति से अब तक के दोषों को उलट कर उसके स्थान पर उपयोगी वातावरण प्रस्तुत कर सकने की क्षमता है। गुरुदेव बता रहे हैं कि हमारे कदम उपासना क्षेत्र में तो बढ़े, लेकिन तीव्र अभिलाषा यह भी बनी रही कि वैसी ही शक्ति अध्यात्म में भी होनी चाहिए नहीं तो पटरी से उतरे इंजन को उठाकर

फिर से यथास्थान रख सकने जैसा प्रयोग कैसे बन पड़ेगा।

दादा गुरु ने गुरुदेव के अंदर उठ रही उत्सुकता के औचित्य को समझा, साथ ही अपने निजी उत्कर्ष को भी उसमें जोड़ा कि समय का प्रवाह बदल सकने वाली किसी ऐसी शक्ति का प्रारम्भ होना चाहिए जो महाक्रान्ति स्तर का युग बदलने जैसा महान परिवर्तन प्रस्तुत कर सके।

सोचने वालों ने सोचा होगा कि किसी को तो आगे करना ही होगा। आवश्यक है कि जिसके पास जन्म-जन्मान्तरों की सुसंस्कारिता संचित है, उसे ही क्यों न पूर्ण विश्वासी बनाया जाए, उसे ही इस प्रत्यक्षवादी वातावरण की अनास्था को आस्था में बदलने का

दाइत्व सौंपा जाए । जिज्ञासु की उत्कण्ठा और शक्ति स्रोत की सहमति का समन्वय बन जाने से ऐसे कदम उठे और ऐसे प्रयोजन सिद्ध हुए, जिनके आधार पर भविष्य निर्माण की दिशा में कोई बड़ा प्रयोजन सधने की आशा किरणें उदय होने लगीं। गुरुदेव ने इसी पुस्तक में किसी जगह लिखा है कि लेखक ने "भक्ति में शक्ति का सम्मिश्रण" होने के कई प्रयोग किए और चमत्कार देखे। बिना किसी के आगे हाथ पसारे गुरुदेव को असाधारण जनबल और धनबल प्राप्त होता गया।

भक्ति और शक्ति के सामंजस्य से प्राप्त होते हैं असाधारण परिणाम।

गुरुदेव बता रहे हैं कि तपोभूमि मथुरा में आयोजित हुए 1958 के सहस्र(1000) कुण्डीय महायज्ञ के सफल

प्रयोग परीक्षण ने हमारी श्रद्धा-विश्वास को कई गुना बढ़ा दिया और बाद में निर्देशित हुए कार्यों का सिलसिला चल पड़ा, जिनका उल्लेख बहुत बार हो चुका है। साहित्य सृजन, संगठन, केन्द्रों की खर्चीली व्यवस्था, अभावग्रस्तों की सहायता जैसे काम इस प्रकार चलते रहे, जैसे कि वे सभी कार्य किसी दूसरे ने किए हों और अपने सिर पर अनायास ही श्रेय का पुलंदा लदता गया। इस यज्ञ की सफलता को किसी एक की वैयक्तिक सफलता का प्रसंग नहीं माना जाना चाहिए कि यह किसी एक के पुरुषार्थ का प्रतिफल सामने आया है बल्कि यह समझा जाना चाहिए कि "भक्ति के साथ शक्ति का भी अविच्छिन्न सामंजस्य है।" निर्देशित शक्ति अपने संकेतों पर चलने वाले समर्पित

व्यक्ति के लिए वैसी ही व्यवस्था करती है, जैसी मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिक के लिए रक्षा विभाग आवश्यक सुविधा सामग्री जुटाने में करती है।

वैयक्तिक प्रयास (Personal efforts) बन पड़ने से जिन्हें सम्भव समझा जा सकता है, उन छिटपुट कामों के सम्पन्न होने के उपरांत निर्देशक ने अपनी “कठपुतली” में इतनी क्षमता भर दी कि वह उनके संकेतों भर से मनमोहक नृत्य अभिनय करने लग पड़े। इतना बन पड़ने के उपरान्त वह भारी वज़न लाद दिया गया, जिसे सम्पन्न करने की कोई व्यक्ति विशेष कल्पना तक नहीं कर सकता, केवल वह अदृश्य सत्ता ही कर सकती थी। मार्गदर्शक की अदृश्य शक्ति ने एक विशाल फैलाव खड़ा कर दिया। यह अदृश्य शक्ति जो कभी किसी सीमा तक

नटखटपन बरतने तक की छूट देती थी,वही जब देखती थी कि मर्यादा का पालन नहीं हो रहा है, उग्रता के कारण मर्यादा भंग हो रही है, तब कान पकड़कर सीधी राह अपनाने के लिए बाधित ही नहीं, प्रताड़ित भी कर सकती है।

“इसी को युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। यही है इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य की परिकल्पना, महाक्रान्ति की अभूतपूर्व परियोजना।”

प्रस्तुत प्रयोजन के लिए जो कुछ भी दृश्य रूप में मानवी प्रयत्नों के अन्तर्गत सम्भव था, उसे युग निर्माण योजना के अन्तर्गत पिछले कई वर्षों से किया जाता रहा है। उसमें जो सफलता मिली है, वह लगभग इसी स्तर की मानी जा सकती है जितनी कि मानवी पुरुषार्थ के

अन्तर्गत आने की परिकल्पना की जा सकती है। मानवी पुरुषार्थ और साधना के समन्वय से संसार के इतिहास में बहुत कुछ ऐसा बन पड़ा है, जिसे “असाधारण” भी कहा जा सकता है और आश्चर्यजनक भी। इसी आधार पर मिशन के दृश्य प्रयास जिस प्रकार बन पड़े हैं और जो प्रतिफल सामने आए उन्हीं में इन्हें भी एक गिना जा सकता है। किन्तु जो काम बन पड़ा है, उसकी तुलना में हजार-लाख गुना और करने के लिए पड़ा है। वह अदृश्य जगत से सम्बन्धित एवं सूक्ष्म स्तर का है। उसकी जड़ें चेतना क्षेत्र के सूक्ष्म जगत में असाधारण गहराई में घुसी हुई हैं। जो बदलाव, परिष्कार प्रस्तुत किया जाना है वह भी ऐसा है जिसे “अभूतपूर्व” ही कहा जा सकता है।

भूतकाल में भी अनीति का अंत और नीति का संस्थापन बराबर होता रहा है लेकिन वह परिवर्तन केवल क्षेत्रीय स्तर के ही थे। भूतकाल में साधनों और वाहनों के अभाव में दुनिया इतनी निकट नहीं आई थी कि समस्त विश्व को एक गाँव-कस्बे की तरह आँका जा सके और प्रगति और अवगति की समस्याएँ समस्त विश्व को थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ एक ही स्तर पर प्रभावित करें। आज कल का परिवर्तन इतने उच्च स्तर का, इतना उलझा हुआ एवं इतना विस्तृत है कि उसे अब तक के सुधार-परिवर्तनों की तुलना में अद्भुत, अनुपम एवं अभूतपूर्व ही कहा जा सकता है। इस विस्तृत परिवर्तन को लाने के लिए हल्के फुल्के प्रयत्न करने से काम नहीं चलेगा,बल्कि वह इतने प्रबल, इतने प्रचण्ड, इतने

सशक्त और इतने व्यापक होने चाहिए, जिन्हें “असाधारण” ही कहा जा सके।

विज्ञान के पक्षधरों ने दुनिया को अधिक सुखद बनाने के लिए परिकल्पनाएँ भी कम नहीं की हैं। इन पक्षधरों ने असाधारण ढाँचे खड़े करने,अद्भुत प्रयोग करने, साधन जुटाने के लिए कम माथा-पच्ची नहीं की है,लेकिन उन सबमें एक ही कमी रही है कि वे भौतिक परिप्रेक्ष्य में भौतिक उपचारों से ही सुधार लाने की बात पर विश्वास करते हैं। आकाश पर कब्जा कर लेने, समुद्र क्षेत्र पर आधिपत्य जमा लेने, प्रकृति-सम्पदाओं में से और भी अधिक छीन लेने, अनुपयुक्त को नष्ट करने वाले उपकरण ढूँढ़ने, सम्पदा-संवर्धन के नए स्रोत खोज निकालने जैसी योजनाएँ ही बन रही हैं, जिन्हें इक्कीसवीं

सदी की समुन्नत योजनाएँ कहा जाता है। लोग कुछ स्तर तक विश्वास भी करते हैं कि भौतिक विज्ञान अति समर्थ है। भौतिक विज्ञान के द्वारा अब तक एक से बढ़कर एक उपलब्धियाँ प्रस्तुत की हैं और अपने आविष्कारों से जादूलोक जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं तो भविष्य में आने वाली योजनाएँ,अवधारणाएँ पूर्ण क्यों नहीं होंगी।

यह भौतिक उपलब्धियां कुछ एक समर्थों के लिए बढ़-चढ़कर सुविधा-साधन उपलब्ध करने के अतिरिक्त और कोई ऐसा आधार प्रस्तुत न कर सकीं जिनसे मानसिक क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण हो सके और मानवी व्यवहार में सद्भावना का अभिवर्धन हो सके। इस स्थिति में आगे भी विज्ञान के आधार पर जो और

भी प्रगति होगी, वह वर्तमान प्रचलन को ही उत्तेजित करेगी। उसमें मानवी उत्कृष्टता का न तो कोई पक्ष जुड़ सका है और न ही ऐसा कुछ बन पड़ने की सम्भावना है, जिससे जनसाधारण को मानवीय मूल्यों की मर्यादाओं के लिए अनुबन्धित किया जा सके। यदि ऐसा न बन पड़ा, तो सम्पन्नता और समर्थता के साथ-साथ अनीति भी बढ़ती ही जाएगी और प्रगति योजनाएँ भयावह विपन्नता के अतिरिक्त और कुछ भी उपलब्ध न कर सकेंगी।

मानवीय मूल्यों का हनन प्रत्यक्षवाद के साथ जुड़ी हुई अनैतिकता के कारण हुआ है । जड़ को काटे बिना विषवक्ष की कुछेक पत्तियाँ तोड़ देने भर से कुछ भी बनने वाला नहीं है। एक नाम रूप वाली विपत्तियाँ

दूसरे नाम रूप से सामने आएँ, इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक उपचारों से और कुछ हेर-फेर बन पड़ने वाला नहीं है। गगनचुम्बी इमारत खड़ी करने के लिए गड्ढे बनाना कौन सा विकास हुआ?

हमें तो स्मरण पुरातन युग, सतयुग का आता है, जब आज की तुलना में साधनों की कहीं अधिक कमी थी, लेकिन सद्भावनाओं के समुन्नत रहने पर लोग उस स्थिति में भी इस प्रकार रह लेते थे, जिन्हें इतिहासकार आज भी स्वर्गोपम होने का प्रतिपादन करते हैं। उन परिस्थितियों का जन्म तपस्वियों द्वारा सूक्ष्म जगत का और चेतना-क्षेत्र का परिष्कार कर सकने पर ही सम्भव हुआ था। आज भी वही एकमात्र विकल्प है, जिसे अपनाकर मनुष्य की देवोपम सद्भावनाओं और

सत्प्रवृत्तियों को उभारा जा सकता है और इसी अवरोध के कारण उत्पन्न हुई सभी विकृतियों का, सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

सतयुग-ऋषियुग था। ऋषियों के पास तपोबल ही एकमात्र शस्त्र था। वृत्तासुर के अनाचार पर दधीचि ऋषि की अस्थियों से बना वज्र इतना प्रचण्ड प्रहार कर सका था कि उसे "इन्द्र वज्र" का नाम दिया गया और उसने वृत्तासुर की व्यापक अवांछनीयता को निरस्त करके रख दिया। अपने समय में विश्वामित्र ने भी ऐसा तपयज्ञ सम्पन्न किया था, जिससे उस समय की व्यापक असुरता का निराकरण सम्भव हुआ और त्रेता में सतयुग की सुसंस्कारिता वापिस लौट आई। भगीरथ का तप ऐसे ही सत्परिणामों का माध्यम बना था।

अभी कुछ ही समय पूर्व योगी अरविन्द, महर्षि रमण, रामकृष्ण परमहँस जैसी आत्माओं ने प्रचण्ड अध्यात्म का मार्ग अपनाया और इसी कारण भारत को नया आश्वासन देने वाले दर्जनों महामानव एक साथ उत्पन्न हुए थे। विगत 50 वर्षों में अनेकों सहयोगी, अनुगामी उत्पन्न हुए हैं जिनके ऊपर महाक्रान्ति की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है।

इसलिए मार्गदर्शक से निर्देश मिला है कि 1990 के वसन्त से अपने लिए एकमात्र कार्य सूक्ष्म जगत में भावनात्मक परिवर्तन लाने के लिए आज की परिस्थितियों के अनुरूप विशिष्ट स्तर की तप-साधना की जाए । सो, उसी दिन से निर्देशित प्रयोग को तत्काल अपना लिया गया है। सैनिक अनुशासन पालने

वाले के लिए और कोई न नुनच करने जैसा विकल्प भी तो कोई है नहीं।

वर्ष 1990 की वसन्त पंचमी 31 जनवरी को थी, उसी दिन से परम पूज्य गुरुदेव ने एकान्त स्तर की समूचे समय चलने वाली-समग्र अध्यात्म साधना का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। जो लोग युग निर्माण की अभिनव योजनाओं में अभी-अभी लगे हैं, इस एकांत साधना की जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त कुछ हड़बड़े से दिखे। इन नए लोगों को कठिनाई यह दिखती थी कि समर्थ सेनानायक का सीधा सम्पर्क रहने पर जो प्रयास सफलतापूर्वक चल रहे थे, वह आगे किस प्रकार चल पाएंगें, साधन कैसे जुटेंगे, प्रोत्साहन और सहयोग कहाँ से मिलेगा पाएगा।

परम पूज्य गुरुदेव ने ऐसे सभी लोगों तक सन्देश पहुँचा दिया था कि सूक्ष्म स्तर की गतिविधियाँ अपनाने पर ही हम अपने प्रत्यक्ष उत्तरदायित्वों को निभा सकने में समर्थ रहेंगे। वह कार्य स्थूल शरीर द्वारा अपनाई जाने वाली प्रत्यक्ष गतिविधियों जैसा भले ही न हो, पर सूक्ष्म चेतना में इतनी क्षमता मानी ही जानी चाहिए कि वह सीमाबद्ध न रह कर प्रत्यक्ष विश्व को प्रभावित करने में भी सशक्त भूमिका निभाती रह सकती है। शान्तिकुञ्ज हमारे प्रत्यक्ष शरीर के रूप में विद्यमान है, उससे सम्बन्धित परिजनों को आवश्यक प्रेरणाएँ और प्रकाश किरणें अनवरत मिलती ही रहेंगी। इन किरणों की ऊर्जा और आभा से संसार भर के महत्त्वपूर्ण प्रयोजन गतिशील बने रहेंगे। अगले दिनों सम्भवत:

किसी को भी हमारी अनुपस्थिति अखरेगी नहीं बल्कि एक ऐसा दृश्य दृष्टिगोचर होगा, जिसमें एक बीज वृक्ष बनकर नए हजारों-लाखों बीज उत्पन्न करता है।

पाठक आज 2023 में देख ही रहे हैं कि परम पूज्य गुरुदेव ने जो शब्द 1988-1990 में बोले थे कैसे सार्थक हुए हैं/हो रहे हैं

गुरुदेव बता रहे हैं कि प्रत्यक्ष भूमिका निभाने की कमी को कोई यह न माने कि मृत्यु हो गई। दिव्य तत्त्व कभी मरते नहीं। शरीर बदल लेने पर आत्मसत्ता का अस्तित्त्व नहीं बदल जाता। यदि वह सशक्त हो, तो स्थूल शरीर का भार एवं बन्धन हट जाने के बाद वह और भी अधिक गतिशीलता का परिचय देने लगता है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में मात्र जन्मदिवस

मनाए जाते हैं। मृत्यु दिवस की तो आश्विन पितृपक्ष में ही एक हल्की-फुल्की चर्चा होती हैं।

स्वामी रामतीर्थ ने शरीर त्याग से कुछ ही समय पूर्व “मृत्यु के नाम सन्देश ” नाम से एक डॉक्यूमेंट लिखा था। उस डॉक्यूमेंट का सारांश है कि

“शरीर का भार लदा रहने से मैं वह नहीं कर पा रहा हूँ, जो कर सकता था। इसलिए अपने ऊपर से इस वज़न के हटते ही हवा के साथ, चाँदनी के साथ, किरणों के साथ मिलकर बहुत उपयोगी बन सकूँगा और अधिक प्रसन्नता भरे उल्लास का रसास्वादन कर सकूँगा।”

स्वामी रामतीर्थ पर हमने अगस्त 2021 में दो विस्तृत लेख लिखे थे जो हमारी वेबसाइट पर उपलब्ध है जिसे

विजिट करके पाठक अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुदेव बताते हैं कि 80 वर्ष जी लेने के उपरान्त और अधिक जीने की इच्छा तो तनिक भी नहीं है लेकिन अगर अपनी मर्ज़ी जीना न हो सका और न मरना कैसे हो सकता है। नियंता की मर्ज़ी ही प्रमुख है। इतने पर भी यह निश्चित है कि शरीर के बिना भी बहुत कुछ करते बन पड़ेगा।

परम पूज्य गुरुदेव ने तो अपने शरीर को एक प्रयोगशाला बनाया था,इसी प्रयोगशाला में उन दिनों पूर्वाभ्यास चल रहा था। यह टेस्ट किया जा रहा था कि एकान्त सेवन के साथ जुड़ी हुई निष्क्रियता दिख पड़ने पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि स्फूर्तिवान

शरीर से लदे रहने पर जितना कुछ किया जाता था, अब उसमें कुछ कमी तो नहीं आ गई है। निष्कर्ष यही निकल रहा है कि इस स्थिति में "सीमित को असीमित" बनाने में समर्थता का अधिक बढ़-चढ़ कर परिचय देने में सहायता ही मिल रही है। विश्वास परिपक्व हो गया है कि जीवित रहने की अपेक्षा शरीर न रहने पर समर्थता एवं सक्रियता और भी अधिक बढ़ जाती है। इसी मान्यता के आधार पर प्रज्ञा परिजनों से विशेष रूप से कहा जा सकता है कि आँखों से न दिख पड़ने पर तनिक भी उदास न हों और निरन्तर यह अनुभव करें कि हम उन्हें अधिक प्यार, अधिक उत्कर्ष और अधिक समर्थ सहयोग दे सकने की स्थिति में तब भी होंगे, जब यह पंच भौतिक ढकोसला मिट्टी में मिल

जाएगा। जो पुकारेगा, जो खोजेगा उसे हम सामने खड़े और समर्थ सहयोग करते दिख पड़ेंगे।

अदृश्य अध्यात्म (Invisible spirituality) की समर्था दृश्यमान विज्ञान की तुलना में कम तो नहीं है, इस असमंजस को इतने दिनों जीकर, अभीष्ट प्रयोग करके यह भली-भाँति जान लिया है कि आत्मबल संसार के समस्त बलों की तुलना में अधिक सामर्थ्यवान है। विज्ञान की पहुँच मात्र जड़ पदार्थों तक है, जबकि अध्यात्म जड़ ही नहीं, चेतना को भी प्रभावित, परिष्कृत करने में समर्थ है। चेतना का सम्बोधन अमृत, पारस, कल्पवृक्ष, कामधेनु आदि के आलंकारिक नामों से किया जाता है।